उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत प्रबन्ध में सन्तद्वय नामदेव और कबीर की दार्शनिक विचारधारा की दृष्टि से उनके काव्य का अंगी आलोड़न करने पर दोनों में परम्परागत साम्य दृष्टिगत होता है। उनकी दार्शनिक विचारधारा एक सुदीर्घ पुरातन परम्परा की देन है।

उभय कवियों के दार्शनिक चिन्तन का विकास भारतीय चिन्तनधारा के स्वाभाविक विकास-क्रम में हुआ और वह सहज नैरन्तर्य की प्रक्रिया की परिणति कही जा सकती है, अतः उनकी विचारधारा श्रुति परम्परा समर्थित है। दोनों की धारणा का मूल उत्स एक होने से साम्य होना स्वाभाविक है।

इन सन्तों का अपना एक दर्शन पक्ष है जिसमें परम्परागत तत्वों को लेकर समन्विता और सारग्राही प्रवृत्ति से सबका सामंजस्य किया है। उनके दर्शन की विशेषता है स्वानुभूति और सहजीकरण। उनके स्वानुभूति पर आधारित दार्शनिक सिद्धान्त जीवन से संयुक्त है " कवि का दर्शन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"[1]

सन्तद्वय नामदेव व कबीर अपने से ब्रह्मनिष्ठ थे अतः उनके काव्य में दर्शन सहज रूप में काव्य का अंग बनकर प्रकट हुआ है। इन्होंने काव्य के द्वारा सत्य की अनुभूति के आनन्द आनन्द को व्यक्त किया है। इनकी वाणियों में भावुकता और नैतिकता निहित उपदेशात्मकता भी है। इस तरह वह जीवन से सम्बद्ध है।

---

1. महादेवी वर्मा - दीपशिखा - पृ. 20

परम्परा के प्रकाश में कवित्रय की दार्शनिक विचारधारा के तुलनात्मक अध्ययन के लिए मराठी और हिन्दी सन्त काव्य परम्परा के अविच्छेद सम्बन्ध के आधार पर यह कहना समुचित होगा कि दोनों एक ही परम्परा के भिन्नकालीन कवि हैं । उनके काल सम्बन्धी अधुनातम प्राप्य तथ्यों का विश्लेषण करने पर दोनों में अर्ध शतक का अन्तर है । परंपरा की अखंडता के लिए अर्ध-शतक का अन्तर विशेष महत्व नहीं रखता ।

सन्तद्वय के जीवन और साहित्य का विश्लेषण करने पर देखा गया कि नामदेव और कबीर दोनों ही तत्कालीन योग और भक्ति समन्वित परम्परा से प्रभावित हुए । नामदेव संस्कारी भक्त थे तो कबीर संस्कारी योगी । नामदेव के व्यक्तित्व में सगुण और निर्गुण में विरोध नहीं है ।

कबीर की तुलना में नामदेव की जीवनी अन्तःसाक्ष्य पर आधारित है ।

दोनों का काव्य आध्यात्मिकता प्रधान काव्य है । संकलन परम्परा के सभी ग्रन्थों में दोनों की कृतियों का समान से समाविष्ट किये जाने से यह सिद्ध होता है कि निर्गुण परम्परा के सर्वाधिक प्रामाणिक गुरु ग्रन्थ साहब या "आदिग्रन्थ" तथा अन्य सभी ग्रन्थों ने उन्हें समान स्थान समादृत किया है । आदिग्रन्थ तो सम्पूर्ण सन्त साहित्य का विशाल संग्रह ग्रन्थ माना जाता है ।[1]

सन्त काव्य में गृहीत गीति काव्य शैली का स्रोत भारत की प्राचीन संगीत परम्परा में ढूंढते हुए यह देखा गया कि ठाकुरदरबारी-संगीत

---

1. डा० पारसनाथ तिवारी - कबीर ग्रन्थावली = पृ० 71

की प्राचीन परम्परा का निर्वहन इन कवियों द्वारा किया गया, अतः नामदेव ही गीति-काव्य शैली के जनक माने जा सकते हैं। इस संगीत परम्परा को परवर्ती कवियों द्वारा अपनाया गया। इसका पूर्ण विकास हमें कृष्णभक्ति साहित्य में दिखाई देता है। सूरदास से लगभग दो शतक पूर्व नामदेव के पदों का रागों में निर्देश ही इसका प्रमाण है। सैद्धान्तिक दृष्टि से नामदेव और कबीर की दार्शनिक विचार-धारा में विलक्षण और परम्परागत साम्य है।

कवि द्वय का परम सत्य ब्रह्म निर्गुण और सगुण ब्रह्म के सभी लक्षणों से युक्त है। दोनों का उपास्यदेव घट-घट वासी अन्तर्यामी "राम" है। वही उनका आत्माराम है, स्वयंभूदेव है। परम्परा से यह "राम" नाथपंथीय परम्परा का परिपाक है, वहीं से यह राम नामदेव द्वारा गृहीत किया गया और उन्हीं के द्वारा हिन्दी सन्त साहित्य में प्रयुक्त हुआ। कबीर ने उस सत्य राम को "निर्गुण" से संबद्ध किया।

सन्तद्वय ने इस निर्गुण ब्रह्म के अवतार रूप के संकेतमात्र देते हुए विराट के परिप्रेक्ष्य में अवतार को माना तथा भगवान के सगुण रूप को मान्यता प्रदान की है। नामदेव के हिन्दी पदों में मराठी के काव्य की भान्ति लीला वर्णन नहीं। अतः यह कहना उचित है कि उनका अवतार रूप वर्णन भक्ति-परक है लीला परक नहीं। इसके साथ ही सन्तों ने साम्प्रदायिक मान्यता प्रधान, बाह्याचारों से रूढ़िग्रस्त मूर्तिपूजा की दुरुपयोगिता का खण्डन भी किया। उनके अवतार रूप ब्रह्म के खण्डन-मण्डन का एक विशिष्ट उद्देश्य था। अवतार रूप का खण्डन करते हुए उन्होंने ससीम में असीम, बहुत्व में एकत्व की अनुभूति कराई और उस एक अनन्त ब्रह्म को अद्वैत भाव से देखने की दिव्य दृष्टि प्रदान की।

इसी एकत्व की अनुभूति के कारण परम्परागत अनन्त नामों में भी उन्होंने एक अभेद के ही दर्शन किये । सन्तों की नाम निरूपण की दो पद्धतियाँ थीं । सगुण भक्ति में केवल नाम लेने से साधारणीकरण नहीं हो पाता था, वहाँ रूप प्रधान था । अतः सन्त रामकृष्ण कहकर भी उसे अन्तर्यामी व सर्वव्यापी कहकर सबका बना देते थे । तब वे सगुण भक्ति के रामकृष्ण नहीं रह जाते थे उन्हें कुछ विट्ठल, गोपाल, गिरिधर, अल्ला, रहीम आदि कुछ भी नाम दिया जा सकता था । ब्रह्म चाहे सगुण हो या निर्गुण, नाम-स्मरण के लिए उसे नाम के बन्धन में बन्धना ही पड़ता है । इसी नाम-महत्ता का गान करते हुए नामदेव ने नामवेद की ही स्थापना की । अतः कहना होगा ---

"नामों के सम्बन्ध कबीर यदि वेद है तो जायसी ब्राह्मण ग्रन्थ, और सूर उपनिषद हैं तो तुलसी पुराण ।"[1] मुंशीराम शर्मा के इस उद्धरण से सहमत होते हुए हम कहना चाहेंगे कि नामदेव ने तो सभी का सोख कर "नामवेद" की ही मौलिक उद्भावना कर डाली ।

तात्त्विक रूप से आत्मा व मुक्ति तथा माया व जगत के विवेचन में नामदेव और कबीर की समान धारणाएं दिखाई देती है ।

दोनों के जीवन का उद्देश्य भक्ति है अतः साधना की दृष्टि से कविद्वय ने योग, भक्ति व ज्ञान समन्वित सहज साधना को ही मान्यता दी है । उनकी सहज-साधना का आधारभूत तत्व है निरन्तर भगवन्नाम स्मरण । इस नाम साधना की प्रतिष्ठा हिन्दी साहित्य की दृष्टि से नामदेव के पदों में प्रथम दिखाई देती है ।

---

1. मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास - पृ. 770

यही कबीर की दृष्टि से यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि कबीर की मुख्य प्रेरणा के स्रोत रामानन्द ही थे । व्यक्तिगत दृष्टि से कबीर को अपने गुरु रामानन्दद्वारा ही राम-नाम की दीक्षा मिली और भक्तिवाद की ओर उनका झुकाव अपने गुरु के स्वाधीन चेता आचार्य रामानन्द के प्रभाव स्वरूप ही हुआ । इसके साथ ही साहित्यिक दृष्टि से उन्होंने जयदेव और नामदेव को भक्ति-प्रेरक के रूप में स्मरण किया है । गीत गोविन्दकार जयदेव संस्कृत के भक्त कवि हैं, उनकी कोई भी हिन्दी कृति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी और इतिहास इस बात का साक्षी है कि रामानन्द से पूर्व निर्गुणभक्ति का प्रतिपादन नामदेव की कविता में ही हुआ । अतः यह स्वयंसिद्ध है कि हिन्दी साहित्य को निर्गुण भक्ति की देन नामदेव की है । स्वामी रामानन्द की अभी तक बहुत कम हिन्दी रचनाएं उपलब्ध हुई है और उनका समय भी अनिश्चित है और उनका समय भी अनिश्चित है । यदि भविष्य में वे नामदेव के पूर्ववर्ती अथवा समकालीन सिद्ध हो तो इस पर पुनर्विचार करना होगा ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से नामदेव के काव्य में दार्शनिक पारिभाषिक रूढ़ शब्दावली का प्रयोग कम हुआ है । ब्रह्म-निरूपण में वे ब्रह्म के सभी लक्षणों का वर्णन करते हैं पर निर्गुण शब्द का उनके हिन्दी पदों में एक ही बार उल्लेख आया है ।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि निर्गुण शब्द परिभाषा सापेक्ष हो गया था अतः उन्होंने पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अधिक न करते हुए सर्व-सामान्य की शब्दावली में अपने विचारों को व्यक्त किया ।

जैसे सन्त साहित्य का अध्ययन करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सभी सन्त ब्रह्म-निरूपण में सापेक्ष शब्दावली का प्रयोग करना ही नहीं चाहते थे, क्योंकि निर्गुण कहने से सगुण की ओर ध्यान चला जाता और सगुण

---

1. तू निर्गुण हौं भरी : डा० मिश्र व मौर्य सं० स०ना०हि०प०
पद- 141

कहने से निर्गुण का खंडन होता था । इसी कारण सन्त कबीर

"निर्गुण राम जपहु रे भाई ।"[1]

उस निर्गुण राम के जप करने का उपदेश करने पर भी सन्तों को चेतावनी देते हुए इस सम्बन्ध में अपनी भूमिका स्पष्ट करते हैं ।

"सन्तो ! धोखा कासूं कहिए

गुण में निरगुण, निरगुण में गुण है ।"[2]

अतः सन्त कबीर उसी सगुण की सेवा और निर्गुण का ध्यान करने के लिए कहने के पश्चात् भी उसे सगुण-निर्गुण से परे मानते हैं । नामदेव भी उसे मन्दिर और मस्जिद से परे कहते हैं ।

"नामा सोई सेविवा, जहाँ देहुरा न मसीत ।"[3]

वे इन पंक्तियों द्वारा उसके सगुण-निर्गुणातीत रूप का ही समर्थन करते हैं ।

इस प्रकार नामदेव और कबीर ने सगुण निर्गुण के समन्वित रूप का ही सन्देश दिया । उनका ब्रह्म द्वैताद्वैत विलक्षण, सगुण-निर्गुणातीत है ।

नामदेव सगुण, निर्गुण की भूमिका को अपने मराठी अभंगों में पूर्ण-रूपेण स्पष्ट कर चुके थे अतः हिन्दी काव्य में उन्होंने संक्षेप में सूत्र में अपनी बात कह दी ।

वैसे नामदेव और कबीर दोनों ही ज्ञानी भक्त थे । ज्ञानी भक्त की उच्चकोटि पर पहुँचकर भक्त का मन सगुण रूप की भक्ति करते हुए भी उसके मूल निर्गुण को कभी नहीं भूलता । यही कारण है कि नामदेव का मन

---

1. कबीर ग्रन्थावली, पद- 49
2. कबीर ग्रन्थावली, पद- 180
3. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद - 208

अपने आराध्यदेव विठ्ठल की भक्ति करते हुए भी उसके निर्गुण स्वरूप से यत्किंचित भी विचलित नहीं होता। उन्होंने मराठी अभंगों में निर्गुण की भूमिका पर ही सगुण का प्रतिपादन किया है।[1] उनके आराध्यदेव विठ्ठल परब्रह्म के प्रतीक हैं।[2] हिन्दी पदों में विठ्ठल पूर्ण-स्वरूप सर्वव्यापी परब्रह्म के रूप में ही वर्णित है। नामदेव के एक हिन्दी में उनकी विठ्ठल विषयक भूमिका स्पष्ट है। वे कहते हैं कि आज जिस विठ्ठल के साक्षात्कार की अनुभूति हुई वह तो मन्दिर और मस्जिद की सीमा से परे है, असीम है अनन्त है।[3]

निष्कर्षतः यही कहना होगा कि नामदेव और कबीर दोनों ही दार्शनिक विचारधारा की दृष्टि से निर्गुणोपासक है और उनकी निर्गुणोपासना पूर्णतया अद्वैती है।

नामदेव और कबीर अनेक पदों में एक ईश्वर का प्रतिपादन करते हुए अगली ही पंक्तियों में एकेश्वरभावना का खण्डन कर अद्वैत की पुष्टि करते हैं इसलिए उनका अद्वैतवाद एकेश्वरवाद पर आधारित नहीं अपितु वेदों के सर्ववाद की ही व्याख्या मात्र है।[4] और वेदान्त के "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" की पुष्टि करता है।

- -

1. निर्गुणाचे भेटी आलो सगुणासंगे। तो हा विठ्ठल देव उभा विटेवरी।
   नामदेव गाथा - अभंग - 320
2. सम्पूर्ण विश्वाचा आत्म्याचा जो आत्मा। तोचि परमात्मा हा विटेवरी।
   अनन्त ब्रह्मांचे जे का निजब्रह्म। तो हे परब्रह्म विटेवरी।
   नामदेव गाथा, पद- 363
3. आजु नामे बीठुला देखिया। मूरख को समझाउ रे।
   हिन्दू पूजै देहुरा। मुसलमाणु मसीत
   नामा सोई सेविआ। जहाँ देहुरा न मसीत।
   डा० निश्च व मोर्ये सं० - सं०ना०हि०प० = पद- 208
4. एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई।
   सभु गोविन्दु सभु गोविन्दु सभ गोविन्दु, गोविन्दु - बिनु नहि कोई
   घटि-घटि व्यापक तत्व निरन्तरि केवल एक मुरारी -
   - वही - पद - 150

यहाँ तक सन्तों ने सन्त और साईं में अभेद भाव ही देखा है। उसी अद्वैत का प्रतिपादन करते हुए सन्त कबीर मुक्ति की धारणा को भी अस्वीकार कर बैठते हैं। उसका समूल खण्डन करते हुए वे कहते हैं कि तुम्हारी कृपा स्वरूप जिस मुक्ति और वैकुंठ की प्राप्ति होगी वह कैसा है ? जब मुझमें और तुममें द्वैत ही नहीं तो मुक्ति कैसी और किसकी ? उस अद्वैत को न समझने तक ही तारण-तिरण की बात कही जा सकती है। वही एक राम की अद्वैतानुभूति होने पर मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।[1]

इस तरह कविद्वय ने उस एक मात्र सत्य का प्रतिपादन अद्वैत की भूमिका पर किया। अतः "एक" शब्द के प्रयोग से एकेश्वरवाद का प्रतिपादन समझना उचित नहीं। उनकी दार्शनिक विचारधारा पूर्ण रूपेण अद्वैती ही सिद्ध होती है। उन्होंने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन नहीं किया।

"राम रमे रमि राम समाया।"[2]

इन शब्दों द्वारा उन्होंने अपनी अद्वैत भावना को अभिव्यक्त किया है, अतः उनकी धारणा कदापि एकेश्वरवादी नहीं, उसे इस्लाम से प्रभावित भी नहीं मान सकते। उसमें एकत्व का आग्रह अवश्य है पर वह वैदिक अद्वैतवाद पर आधारित है। उनकी एकत्व भावना की आधारभूमि "एकं सद्विप्रा," बहुधा वदन्ति" यही वैदिक मन्त्र है जो उनकी अद्वैत धारणा की पुष्टि करता है।

अद्वैत की सुदृढ़ आधारशिला पर सन्तद्वय नामदेव और कबीर, तथा सभी कवियों ने मानवतावाद की स्थापना की। नर में नारायण की अनुभूति कराई जिससे मानवता को उसकी महानता की प्रतीति हुई और दीन जीवन में अभेद सम्बन्ध स्थापित किया।

---

1. डा० श्यामसुन्दर दास, सं० क० ग्रं० = पद - 52
2. डा० मिश्र व मौर्य सं० - स० ना० हि० प० - पद - 58

नित्य, शाश्वत और सार्वजनीन तत्वों का प्रतिपादन करते हुए उसे जीवन में उतारने का परामर्श दिया । सत्य और सदाचरण पर बल देते हुए कथनी और करनी की एकरूपता का उपदेश दिया ।

परमतत्व के सहज रूप द्वारा उन्होंने सहजानुभूति की प्रेरणा प्रदान की । सहज साधना द्वारा उस परमानन्द की उपलब्धि का मार्ग दिखाया । सहज से उनका अभिप्राय स्वाभाविक जीवन से था, और जीवन को ही ब्रह्ममय अनुभव कर लेना यही सहजोपासना है । सभी सन्तों ने अपने दैनिक कर्म को विश्वरूपी भगवान् को अर्पित कर ब्रह्म कर्म बना लिया था । रैदास जूता सीने के कर्म को, कबीर कपड़ा बुनने के व्यवसाय को, ब्राह्मकर्म ही मानते थे यही उनकी सहजोपासना थी । जब भक्त के भीतर अर्पण का भाव उत्पन्न हो जाता है तब उसे उपासना के नाम पर कुछ अलग विधान की आवश्यकता नहीं । धन्धे में ही उनका ध्यान बैठ गया तब वे कर्म को ब्रह्मस्वरूप समझते थे । उनकी सहजोपासना का लक्षण ही है अर्पित जीवन । गीता के सिद्धान्त "कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि" अर्थात् कर्म को ब्रह्म से ही उत्पन्न जानो, इसको सन्तों ने अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था । इसी सहज साधना द्वारा उन्हें परम सत्य की अनुभूति हुई ।

कविद्वय नामदेव और कबीर का उद्देश्य एक ही था परम सत्य की अनुभूति । अनुभूति की समानता के कारण अभिव्यक्ति में परम्परागत विकरण साम्य होने पर भी आस्था की दृष्टि से दोनों में अन्तर लक्षित होता है ।

यद्यपि भक्ति द्वारा मुक्ति की सिद्धि में दोनों की अटूट आस्था है पर नामदेव के मत में भक्ति साध्य है मुक्ति साधन और कबीर के मत में मुक्ति साध्य है भक्ति साधन । इसी कारण नामदेव भक्ति के लिए मुक्ति को त्यागने की इच्छा प्रकट करते हैं ।[1] और भक्ति की प्राप्ति न होने पर वे

---

1. डा० मिश्र व मौर्य सं० स०ना०हि०प० = पद - 49

प्राण-त्याग की धमकी देते हैं ।[1] भक्ति के समक्ष वे चार मुक्तियाँ तथा आठ सिद्धियों को भी तुच्छ मानते हैं ।[2] यही नहीं अपितु उनके मराठी अभंगों में इसी भक्ति के लिए, सेवा के लिए बारम्बार जन्म लेने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं ।[3] यहाँ मराठी सन्तों की भाँति उन्होंने भक्ति को प्रधानता दी है यह मराठी सन्त काव्य की विशेषता ही रही है ।

"भक्ति महेली मुक्ति की"

शब्दों द्वारा कबीर भक्ति को मुक्ति की सीढ़ी कहते हैं ।[4] उत्तर भारत के सभी सन्त भवबन्धन से छूटकर मुक्ति-कामना करते हैं । जगत के नानात्व देख रहा है, द्वैत का संस्कार मिल रहा है, अद्वैत की स्थिति मुक्ति, कबीर रूप से अरूप की ओर, नाम अरूप से रूप की ओर यहाँ कबीर और नामदेव की आस्था में अन्तर दिखाई देता है । कबीर के पदों में कहीं भी नामदेव की भाँति सेवा के लिए बारम्बार जन्म लेने की और भक्ति के लिए मुक्ति त्याग की इच्छा व्यक्त नहीं की गई ।

यद्यपि दोनों की योग में आस्था थी । नामदेव गुरु परम्परा के प्रभाव स्वरूप योग की ओर उन्मुख हुए, अतः उनकी कविता में योग साधना का निर्मल व सरल रूप मिलता है । कबीर संस्कारी योगी होने से उनके काव्य में योग का विस्तृत व व्यापक वर्णन हुआ । वे जटिल योग साधना से सरल सहज साधना की ओर उन्मुख हुए, पर दोनों की वृत्ति योग-साधना में नहीं रमी ।

उभय कवियों की साधना का मूलस्वर भक्ति ही रहा । नामदेव की साधना नामभक्तिमूला है और कबीर की प्रेमभक्तिमूला । दोनों के काव्य में परमप्रेमा नारदी भक्ति के तत्वों को ही प्रधानता मिली है ।

---

1. डा० मिश्र व मोर्य सं० - सं०ना०हि०प० = पद - 69
2. - वही - पद- 3
3. नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्र० - मराठी अभंग - 1768
4. कबीर साखी संग्रह - पृ० 33 सा० 8

"सार तुम्हारा नाव है, झूठा सब संसार"

कवि‌द्वय सिद्धान्त रूप में नारदी भक्ति के मूलतत्व नाम के महत्व को समान रूपेण मान्य करते हैं । नाम ही भाव भक्ति और विश्वास का मूल है । रत्नाकर डाकू को नारद ने नाम ही तो दिया था । और नाम से ही तो प्रेम की प्राप्ति होती है ।

नामदेव की दृष्टि प्रेम की अपेक्षा नाम पर अधिक केन्द्रित थी, कबीर की प्रेम पर ।

नाम साधना है और साधना की अवस्था दीर्घ होती है अतः उसकी चर्चा नामदेव द्वारा बहुत विस्तार से की गई पर कबीर के काव्य में प्रेम को प्रधानता मिली है । परमप्रेम तक दोनों ही पहुंचना चाहते हैं । नामदेव नाम के माध्यम से तो कबीर ने सीधे प्रेम को ही पकड़ लिया । उनके लिए भगवत प्रेम साध्य है और सब साधन । इस प्रकार नामदेव नाम-साधक और कबीर परम प्रेम के साधक कहे जा सकते हैं ।

इन द्वय कवियों ने अपने उपास्य देव के प्रति सेव्य- सेवक भाव पर बल दिया है अनेक पर दोनों की प्रेमभक्ति की आस्था में अन्तर दिखाई देता है ।

नामदेव की भक्ति में दाम्पत्यभाव की अपेक्षा वात्सल्यभाव प्रधान है । महाराष्ट्र की अविकल शुद्ध भक्ति परम्परा का प्रभाव यहां स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । नामदेव और अन्य मराठी सन्तों ने अपने आराध्यदेव विठ्ठल को विठ्ठलमाउली अर्थात विठ्ठल को माता कह संबोधित किया है । अतः उनकी भक्ति मुख्यतः वात्सल्य पर आधारित है । नामदेव की वात्सल्य-भक्ति की समानधर्मी दृष्टिभंगिमा हमें सूरदास का स्मरण कराती है । और वे सूरदास की वात्सल्य भक्ति के प्रेरक कहे जा सकते हैं ।

नामदेव की भक्ति के आदर्श हैं स्वाभाविक प्रीति के प्रतीक । वे विठ्ठल के प्रति अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए दृष्टान्तों की झड़ी सी लगा देते है । उन्होंने अनेक स्थानों पर अपनी प्रेम की तालावेली को पानी बिना मछली, माता के बिना बालक, बछड़े के बिना गाय के उदाहरणों द्वारा व्यक्त किया है ।[1] एक मराठी अभंग में वे कहते हैं "जैसे हरिणी को नाद, मारवाड़ी को जल, ऊँट को क्षुधा धरणी को पर्जन्य, कोकिला को आम्रवृक्ष, चक्रवाक को सूर्य प्यारा है वैसे ही उन्हें विठ्ठल प्यारे हैं ।[2]

इस दृष्टि से कबीर के पदों में माधुर्यभाव प्रधान है, उन्होंने पति-पत्नी के सम्बन्ध द्वारा ही अपनी विरह व्याकुलता को प्रकट किया है । यह सूफी प्रभाव भी कहा जा सकता है । वैसे सभी कवि रहस्यवादी अभिव्यक्ति के समय विशेषतः दाम्पत्यविषयक प्रतीकों का ही प्रयोग करते हैं । इस प्रकार की रहस्यात्मक अनुभूति व अभिव्यक्ति का व्यापक वर्णन हमें कबीर के पदों में प्राप्त होता है । वैसे नामदेव के हिन्दी पदों में यत्र-तत्र दाम्पत्यभावना दिखाई देती है इससे यह सिद्ध होता है कि इस भावना के मूल बीज भी नामदेव की कविता में पाये जाते हैं ।

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का सर्वांग अध्ययन करने पर हमें महाराष्ट्र की भक्ति परम्परा में सगुण और निर्गुण में अविरोध दिखाई देता है इसी कारण मराठी और हिन्दी सन्तों की आस्था में अन्तर दिखाई देता है ।

नामदेव के मराठी काव्य में सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं के बीज प्राप्त होते हैं । कृष्णकथा में नामदेव का दृष्टिकोण सगुण भक्त का होने पर भी उन्होंने श्रीकृष्ण की शृंगारलीला को महत्व न देते हुए बाललीला

---

1. डा० मिश्र व मोर्य सं० - स॰मा॰हि॰प॰ = पद- 59
2. नामदेव गाथा - महाराष्ट्र शासन प्रकाशन - भारती
   मराठी अभंग - 1484

और चमत्कार को अधिक महत्व दिया है, और विट्ठल माहात्म्य में भी निर्गुण की भूमिका पर ही सगुण का प्रतिपादन किया है । नामदेवरचित रामकथा का स्वरूप भी स्पष्ट आख्यानपरक है । कीर्तन के रंग को जमाने के लिए रामकथा के कुछ प्रसंग काव्यबद्ध किये है जिसमें कथा निरूपण के साथ तत्त्वबोध भी है पर उसमें भी उत्कट भक्ति भावना ही दिखाई देती है । इस तरह उनके काव्य का समग्रता से अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है कि उसमें भी निर्गुणोपासना ही प्रधान है ।

जहाँ मराठी कृतियों में नामदेव का निर्गुण प्रधान सगुणोपासक रूप समझा जाता है वहाँ उन्होंने सार्वजनिन व्यापकता के लिए हिन्दी में निर्गुणोपासना का ही प्रतिपादन किया और कबीर मुख्यतया निर्गुणोपासक ही दिखाई देते हैं, यद्यपि उन्होंने भी सगुण का संकेत देते हुए ही निर्गुण की स्थापना की । उनके काव्य में व्यापक रूप में निर्गुण चिन्तन प्रधान है । सभी सन्तों ने परमतत्त्व के सगुण और निर्गुण इन दो तत्त्वों में से अन्तिम सत्य निर्गुण को ही माना है और सगुण निर्गुण के आर पार की स्थापना की ।

कबीर से नामदेव की तुलना निर्गुणोपासना की दृष्टि से ही की जा सकती है जिसे पूर्ववर्ती विद्वानों ने भी स्वीकार किया है ।[1] दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में उभय कवियों की विचार-धारा का तुलनात्मक अध्ययन करने पर साम्य ही दृष्टिगत होता है । अन्तर की दृष्टि से नामदेव की वाणी में विनम्रता का स्वर प्रत्यक्ष है तो कबीर की वाणी में विद्रोह का स्वर प्रधान है ।

---

1. सगुण भक्ति के साथ निर्गुण भक्ति के आद्य प्रवर्तक होने का श्रेय नामदेव को ही दिया जाता है । इस विषय में उनकी तुलना कबीरदास के साथ की जा सकती है ।
   बलदेव उपाध्याय - भागवत सम्प्रदाय - पृ. 578

सम्प्रदाय मूलतः भक्त कवि थे । "राम" जी नामब्रह्म के निर्गुण स्वरूप में आस्थावान् नामदेव और कबीर दार्शनिक विचारधारा की दृष्टि से निर्गुणोपासक ही सिद्ध होते हैं, यही इस अध्ययन की उपलब्धि है ।

**